Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.03, No.2, September, 2024

एका एक मिलै गुरु पूरा": भारतीय भक्ति परंपरा में गुरु–शिष्य संबंध

डॉ. मेधा
सहायक प्रवक्ता, हिंदी विभाग, सत्यवती कॉलेज सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

****

शोधसार :

"एका एक मिलै गुरु पूरा, मूल मंत्र जो पावै।
सकल संत की बानी बुझै, मन परतीत बढ़ावै॥"

संत धरणीदास की ये पंक्तियाँ गुरु की सामान्य स्तुति नहीं, बल्कि भारतीय भक्ति परंपरा में गुरु–शिष्य संबंध की उस गहन संरचना की ओर संकेत करती हैं,जिसमें गुरु का मिलना साधक के जीवन में दृष्टि-परिवर्तन (transformation of vision) की घटना बन जाता है। 'पूरा गुरु' किसी बाहरी धार्मिक प्राधिकारी की प्राप्ति मात्र नहीं है; वह ऐसी उपस्थिति है जिसके माध्यम से शिष्य अपने पूर्वनिर्मित आत्मबोध, सामाजिक पहचान और ज्ञान की सीमाओं से आगे बढ़कर आत्मानुभूति (self-realization) की ओर अग्रसर होता है। प्रस्तुत आलेख का केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि भारतीय भक्ति परंपरा में गुरु–शिष्य संबंध को केवल ज्ञान-संप्रेषण (transmission of knowledge), धार्मिक अनुशासन अथवा परंपरागत उत्तराधिकार (lineage) की संस्था के रूप में नहीं समझा जा सकता। यह मूलतः संबंधात्मक आत्म-निर्माण (relational self-formation) की प्रक्रिया है। गुरु शिष्य को केवल 'क्या जानना है' नहीं बताता, बल्कि 'कैसे देखना है' की दृष्टि देता है। इसीलिए भक्ति में गुरु की उपस्थिति शिष्य की आध्यात्मिक स्वायत्तता (spiritual agency) को नष्ट नहीं करती, बल्कि उसे निर्मित करती है। कबीर, सहजोबाई, मीरा, जनाबाई, बुल्ले शाह, रूमी–शम्स और संत धरणीदास के काव्यात्मक अनुभवों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से यह लेख प्रतिपादित करता है कि गुरु भारतीय भक्ति-संवेदना में प्रेम, समर्पण, आत्मानुशासन, अंतर्दृष्टि और अहं-अतिक्रमण के बीच सेतु का कार्य करता है। गुरु का अर्थ किसी विशिष्ट वेशभूषा, जाति, लिंग, संस्था या पद से बँधा हुआ नहीं है; गुरु-तत्त्व (guru-principle) वह चेतना है जो मनुष्य को उसके सीमित 'मैं' से निकालकर व्यापक मानवीय और आध्यात्मिक आत्मबोध तक ले जाती है।

बीजशब्द : *गुरु–शिष्य संबंध, भारतीय भक्ति परंपरा, गुरु-तत्त्व, भक्ति, आत्मानुभूति, आत्मपरकता (subjectivity), आत्म-निर्माण (self-formation), आध्यात्मिक स्वायत्तता (spiritual agency), अनुग्रह (grace), संत साहित्य, स्त्री-भक्ति, सूफ़ी परंपरा।*

****

प्रस्तावना: गुरु का मिलना एक आंतरिक घटना

"**एका एक मिलै गुरु पूरा**"—धरणीदास की यह पंक्ति गुरु की प्राप्ति को किसी बाहरी धार्मिक उपलब्धि की तरह नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर घटने वाली एक निर्णायक घटना की तरह देखने का अवसर देती है। 'पूरा गुरु' मिलना दरअसल किसी व्यक्ति का मिल जाना भर नहीं है; यह **दृष्टि के बदल जाने की घटना** है। वही संसार, वही देह, वही संबंध और वही जीवन—लेकिन उन्हें देखने वाली आँख बदल जाती है।

Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.03, No.2, September, 2024

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में गुरु की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। उपनिषदों के संवादों से लेकर भगवद्गीता और मध्यकालीन संत-काव्य तक ज्ञान को केवल सूचना नहीं माना गया। ज्ञान का वास्तविक अर्थ जीवन को रूपांतरित करनेवाली अनुभूति (transformative experience) से जुड़ा रहा है। भगवद्गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया..." [1] यहाँ ज्ञान की प्राप्ति के साथ समर्पण, प्रश्नाकुलता और साधना को एक ही प्रक्रिया में रखा गया है। इसलिए गुरु के पास जाना किसी पाठ्यक्रम में प्रवेश लेना नहीं है। यह अपने ही अस्तित्व के प्रश्न के सामने उपस्थित होना है।

भक्ति इस गुरु–शिष्य संबंध को और अधिक आत्मीय तथा भावात्मक बना देती है। यहाँ गुरु केवल शिक्षक नहीं रहता। वह कभी मार्गदर्शक है, कभी सहचर, कभी दर्पण, कभी चुनौती, कभी प्रेम का माध्यम और कभी ऐसी उपस्थिति जिसके कारण शिष्य अपने भीतर छिपे अंधकार को पहचान पाता है। इस अर्थ में भक्ति केवल ईश्वर-प्रेम का साहित्य नहीं है; वह **मनुष्य के रूपांतरण का साहित्य** भी है।

भक्ति का मूल तत्त्व : संबंध, सहभागिता और आत्मानुभूति

भक्ति को प्रायः 'devotion' अर्थात् भक्ति, श्रद्धा या ईश्वर-समर्पण के रूप में समझा गया है। किंतु करेन पेचिलिस प्रेंटिस ने इस पारंपरिक परिभाषा की सीमाओं की ओर संकेत करते हुए भक्ति को **सहभागिता (participation)** और **देहधर्मिता (embodiment)** के संदर्भ में समझने का प्रस्ताव किया है। उनके अनुसार भक्ति केवल भीतर की भावना नहीं, बल्कि ईश्वर के साथ सक्रिय रूप से संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया है।[2] इस स्थापना का गुरु–शिष्य संबंध के अध्ययन में विशेष महत्त्व है। यदि भक्ति मूलतः संबंध है, तो गुरु के साथ संबंध भी केवल ज्ञान प्राप्त करने का संबंध नहीं हो सकता। उसमें श्रद्धा है, किंतु प्रश्न भी है; समर्पण है, किंतु आत्मानुभव की आकांक्षा भी है; अनुशासन है, किंतु अंततः स्वतंत्र होने की अनिवार्यता भी है। इसलिए भक्ति की यात्रा को इस प्रकार समझा जा सकता है कि वो सम्बन्ध से प्रारंभ होता है और समर्पण , साधना , अनुभूति से गुजरती हुई आत्मसाक्षात्कार तक पहुंचती है। गुरु इस पूरी प्रक्रिया का स्वामी नहीं, **उत्प्रेरक (catalyst)** है। वह साधक को अपने ऊपर निर्भर रखने के लिए नहीं, उसकी दृष्टि को इतना विस्तृत करने के लिए आता है कि वह सत्य के साथ अपना जीवंत संबंध स्थापित कर सके।

गुरु : ज्ञान का स्रोत नहीं, दृष्टि का उद्घाटक

भगवद्गीता का "प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया" गुरु–शिष्य संबंध की एक अत्यंत सूक्ष्म त्रयी प्रस्तुत करता है—**समर्पण, प्रश्न और साधना।**[1]

यदि केवल समर्पण हो और प्रश्न न हो, तो संबंध अंधानुकरण में बदल सकता है। यदि केवल प्रश्न हो और साधना न हो, तो वह बौद्धिक जिज्ञासा भर रह जाएगा। और यदि केवल सेवा हो तथा आत्मबोध का प्रश्न अनुपस्थित हो, तो वह कर्मकांड बन सकता है। अर्थात् भारतीय भक्ति -परंपरा में आदर्श गुरु–शिष्य संबंध **श्रद्धा और विवेक, समर्पण और प्रश्न, अनुशासन और आत्मानुभूति** के बीच निर्मित होता है। यहीं गुरु की वास्तविक भूमिका स्पष्ट होती है- गुरु उत्तर देने से अधिक शिष्य को उस स्तर तक ले जाता है जहाँ वह उत्तर को स्वयं देख सके। गुरु से प्राप्त ज्ञान इसलिए सूचना मात्र नहीं होता, **रूपांतरकारी ज्ञान (transformative knowledge)** होता है।

गुरु और आत्मपरकता : 'मैं' की निर्मिति और उसका अतिक्रमण

आधुनिक साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन में आत्मपरकता (subjectivity) उस प्रक्रिया की ओर संकेत करती है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने बारे में एक 'स्व' (self) निर्मित करता है। यह 'मैं' कभी भी केवल निजी नहीं होता। जाति, कुल, लिंग, परिवार, भाषा, वर्ग, धर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा व्यक्ति की आत्म-छवि को आकार देते हैं।भक्ति-साहित्य इस निर्मित 'मैं' के भीतर एक दूसरी संभावना खोलता है। कबीर का जाति-विरोध, मीरा का कुल और

सामाजिक मर्यादाओं से परे कृष्ण के प्रति समर्पण, जनाबाई का श्रमशील स्त्री-अनुभव को आध्यात्मिक अनुभव में बदल देना और बुल्ले शाह का जाति-कुल की सीमाओं को प्रेम में अतिक्रमित करना—ये सभी आत्म-निर्माण की वैकल्पिक प्रक्रियाएँ हैं। इस संदर्भ में गुरु को आध्यात्मिक आत्म-निर्माण (spiritual self-formation) का माध्यम कहा जा सकता है। गुरु शिष्य को कोई नई सामाजिक पहचान नहीं देता; वह उसे यह देखने की क्षमता देता है कि उसकी वर्तमान पहचान पूर्ण नहीं है। इसलिए गुरु की उपस्थिति में 'मैं' मिटता नहीं; उसका विस्तार होता है।

कबीर : गुरु और अंतर्दृष्टि का जन्म

कबीर का प्रसिद्ध दोहा है—

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।

बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय॥"[3]

यहाँ गुरु को ईश्वर से ऊपर स्थापित करने की सरल व्याख्या पर्याप्त नहीं है। साहित्यिक दृष्टि से इस दोहे का अधिक महत्त्वपूर्ण अर्थ यह है कि गुरु 'गोविंद' को पहचानने की दृष्टि देता है। अर्थात् गुरु स्वयं अंतिम सत्य नहीं; वह सत्य को देखने की आँख है। कबीर की निर्गुण भक्ति बाहरी धार्मिक प्रतीकों और कर्मकांडों के बजाय भीतर के अनुभव पर बल देती है। इसीलिए उनके यहाँ गुरु का कार्य शिष्य को किसी व्यक्ति-पूजा में स्थिर करना नहीं, बल्कि उसे अंतर्जगत की ओर मोड़ना है। डेनियल गोल्ड ने उत्तर भारतीय संत परंपरा के अध्ययन में 'गुरु' को संत-परंपरा की केंद्रीय संरचनाओं में देखा है और यह दिखाया है कि भक्त के लिए गुरु केवल धार्मिक शिक्षक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभव का जीवित केंद्र बन सकता है।[4] इस प्रकार कबीर का गुरु-विमर्श मूलतः **दृष्टि-परिवर्तन** का विमर्श है

सहजोबाई : गुरु, स्त्री-अस्मिता और आध्यात्मिक स्वायत्तता

स्त्री-भक्ति को यदि केवल भावुक धार्मिक समर्पण मानकर पढ़ा जाए तो उसके भीतर उपस्थित वैचारिक शक्ति अदृश्य हो जाती है। स्त्री-भक्ति में प्रेम के साथ-साथ स्वर (voice), देह (body), इच्छा (desire), आत्मनिर्णय (self-determination) और आध्यात्मिक स्वायत्तता (spiritual agency) के प्रश्न भी उपस्थित होते हैं। सहजोबाई और उनके गुरु चरणदास का संबंध इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। संत-परंपरा में प्रचलित कथा के अनुसार विवाह के अवसर पर चरणदास द्वारा संसार की नश्वरता का बोध कराने वाला उपदेश सहजोबाई के जीवन में निर्णायक बनता है। उनसे संबद्ध प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं—

> "सहजो तनिक सुहाग पर कहा गुदायो सीस।
> मरना है रहना नहीं..." [5]

इस प्रसंग को केवल संसार-त्याग की कथा मानना पर्याप्त नहीं होगा। इसके भीतर स्त्री के लिए उपलब्ध सामाजिक जीवन की नियत भूमिकाओं और उसकी आध्यात्मिक आकांक्षा के बीच तनाव भी दिखाई देता है। सहजोबाई का साधिका बनना स्त्री के लिए एक वैकल्पिक आत्म-पहचान का निर्माण है। करेन पेचिलिस ने हिंदू स्त्री-गुरुओं के ऐतिहासिक अध्ययन में यह दिखाया है कि स्त्री आध्यात्मिक नेतृत्व भारतीय धार्मिक परंपरा से अनुपस्थित नहीं था। *The Graceful Guru* की भूमिका में वे स्त्री गुरु की धार्मिक नेतृत्व में भागीदारी तथा परंपरा के भीतर निरंतरता और परिवर्तन के प्रश्नों को सामने रखती हैं।[6] इस दृष्टि से सहजोबाई की गुरु-भक्ति केवल समर्पण का आख्यान नहीं है; वह **आध्यात्मिक आत्म-अधिकार** का आख्यान भी है।

मीरा और जनाबाई : गुरु-तत्त्व की व्यापकता

मीरा की भक्ति में किसी एक ऐतिहासिक गुरु-व्यक्ति की केंद्रीय उपस्थिति नहीं मिलती, जैसा सहजोबाई या बुल्ले शाह के प्रसंग में दिखाई देता है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि गुरु-तत्त्व अनुपस्थित है।

मीरा का प्रसिद्ध उद्घोष—

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।"[7]

सामाजिक रूप से आरोपित संबंधों की तुलना में चुने हुए आध्यात्मिक संबंध को प्राथमिकता देता है। यहाँ गुरु-तत्त्व को किसी व्यक्ति की संकीर्ण परिभाषा से बाहर निकालना आवश्यक हो जाता है।

इसी प्रकार जनाबाई के यहाँ घरेलू श्रम और विठ्ठल-भक्ति का संबंध यह उद्घाटित करता है कि आध्यात्मिक अनुभव किसी विशिष्ट सामाजिक स्थान का विशेषाधिकार नहीं है। भक्ति में गुरु कभी व्यक्ति होता है, कभी वाणी, कभी अनुभव, कभी प्रियतम और कभी स्वयं जीवन। इसीलिए 'गुरु' और 'गुरु-तत्त्व' के बीच अंतर करना आवश्यक है।

बुल्ले शाह : गुरु और जाति की दीवार के पार प्रेम

बुल्ले शाह और शाह इनायत क़ादरी का संबंध गुरु–शिष्य परंपरा के उस रूप को सामने लाता है जिसमें आध्यात्मिक प्रेम सामाजिक पहचान की सीमाओं को चुनौती देता है। शाह इनायत को बुल्ले शाह का आध्यात्मिक गुरु माना जाता है; साथ ही उनके जीवन के अनेक विवरण लोक-स्मृति और मौखिक परंपरा से जुड़े हैं, इसलिए जीवन-कथात्मक आख्यानों और ऐतिहासिक प्रमाणों में अंतर करना आवश्यक है।[8]

लोकप्रिय रूप से बुल्ले शाह से संबद्ध पंक्ति है—

"बुल्ला शाह दी जात न कोई,
मैं शाह इनायत पाया है।"
यहाँ 'जात' केवल जन्माधारित सामाजिक पहचान नहीं;

वह उस समूचे आत्मबोध का प्रतीक है जिसे समाज व्यक्ति पर आरोपित करता है। गुरु की प्राप्ति यहाँ पहचान के पुनर्गठन की घटना है। सूफ़ी परंपरा में इश्क़ (divine love) की अवधारणा और भारतीय भक्ति के प्रेम-तत्त्व के बीच तुलनात्मक संवाद संभव है, यद्यपि दोनों को एक ही परंपरा मान लेना उचित नहीं होगा। बुल्ले शाह की गुरु-भक्ति से जुड़े नृत्यात्मक आख्यानों में देह भी आध्यात्मिक संबंध की भाषा बन जाती है। इसीलिए "तेरे इश्क़ नचाया" की लोकप्रिय परंपरा में नृत्य आत्म-विसर्जन का रूपक बन जाता है।

रूमी–शम्स : विद्वत्ता से प्रेमानुभूति की यात्रा

रूमी–शम्स संबंध भारतीय भक्ति परंपरा का प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं है; किंतु गुरु–शिष्य और मुर्शिद–मुरीद संबंध के तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। रूमी अपने समय के प्रतिष्ठित धार्मिक विद्वान थे। शम्स तबरीज़ी की उपस्थिति ने उनके विद्वतापूर्ण संसार को प्रेम और आध्यात्मिक अनुभव की नई दिशा दी।

अन्नेमेरी शिमेल ने रूमी के आध्यात्मिक जीवन में शम्स की उपस्थिति को उनके रूपांतरण की केंद्रीय शक्ति के रूप में देखा है।[9]

यहाँ गुरु कोई नया पाठ नहीं पढ़ाता; वह पहले से अर्जित ज्ञान की सीमाएँ उजागर करता है। यही गुरु का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है— **ज्ञान को अनुभव में बदल देना।** इस अर्थ में शम्स रूमी के लिए ज्ञान का जोड़ नहीं, बल्कि ज्ञान की सीमाओं का उद्घाटन हैं।

गुरु, अनुग्रह और शिष्य की पात्रता

भारतीय भक्ति-संवेदना में गुरु के मिलन के साथ 'पात्रता' की अवधारणा जुड़ी हुई है। पात्रता किसी औपचारिक योग्यता का नाम नहीं है। यह भीतर की **ग्रहणशीलता (receptivity)** है। अहंकार से भरा मन ज्ञान सुन सकता है, किंतु उसे ग्रहण नहीं कर सकता। प्रश्नाकुल और विनम्र मन साधारण घटना से भी गहरी सीख प्राप्त कर सकता है। यहीं अनुग्रह (grace) का प्रश्न आता है।भक्ति में साधना आवश्यक है, लेकिन अंतिम अनुभव को केवल व्यक्तिगत प्रयास का परिणाम नहीं माना जाता। कृपा वह क्षण है जब चेतना अपने पुराने ढाँचे को पार कर जाती है। गुरु इस कृपा का माध्यम हो सकता है। लेकिन गुरु-कृपा का अर्थ चमत्कार नहीं; उसका गहरा

अर्थ है—दृष्टि का खुलना। इसलिए 'गुरु मिला' और 'गुरु को पहचान लिया' दो अलग घटनाएँ हैं।

समर्पण और स्वायत्तता : गुरु शिष्य को स्वतंत्र करता है

गुरु–शिष्य संबंध का सबसे कठिन सैद्धांतिक प्रश्न यही है कि यदि शिष्य गुरु के प्रति समर्पित है तो उसकी स्वतंत्रता कहाँ है? भारतीय भक्ति का उत्तर है—सच्चा समर्पण स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करता; वह स्वतंत्रता को जन्म देता है। भय, लोभ और सामाजिक स्वीकृति से संचालित मनुष्य बाहर से स्वतंत्र दिखाई दे सकता है, लेकिन भीतर से अनेक बंधनों में होता है। गुरु इन बंधनों को देखने की दृष्टि देता है।

इसलिए आध्यात्मिक स्वायत्तता (spiritual agency) का अर्थ गुरु का निषेध नहीं है। इसका अर्थ है—गुरु से प्राप्त दृष्टि के आलोक में स्वयं सत्य की ओर चल सकने की क्षमता। इस अर्थ में गुरु–शिष्य संबंध **निर्भरता (dependence)** से आगे बढ़कर **सशक्तीकरण (empowerment)** का संबंध बन सकता है। सच्चा गुरु शिष्य को अपनी प्रतिकृति नहीं बनाता; उसे स्वयं बनने की क्षमता देता है।

गुरु-तत्त्व और गुरु-व्यक्तिपूजा

गुरु की महिमा के साथ एक जोखिम भी जुड़ा है—**गुरु-व्यक्तिपूजा (personality cult)**। यहाँ गुरु और गुरु-तत्त्व के बीच अंतर आवश्यक हो जाता है। गुरु एक ऐतिहासिक व्यक्ति हो सकता है; गुरु-तत्त्व उससे व्यापक है।गुरु-तत्त्व वह चेतना है जो— अज्ञान में विवेक, भय में निर्भयता, द्वेष में करुणा, अहंकार में विनम्रता,अलगाव में आत्मीयता और वासना/लोभ में संयम उत्पन्न करती है। डेनियल गोल्ड के अध्ययन में उत्तर भारतीय संत परंपरा के संदर्भ में गुरु की स्थिति धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संबंधों के जटिल ताने-बाने से जुड़ी दिखाई देती है।[10] अतः किसी गुरु की वास्तविक कसौटी अनुयायियों की संख्या, बाहरी प्रतिष्ठा या चमत्कार नहीं हो सकती। कसौटी यह है— उसके संपर्क के बाद शिष्य कैसा मनुष्य बनता है?

भक्ति की बहुलता और गुरु की विविध आकृतियाँ

भारतीय भक्ति को एक एकरेखीय, अखिल-भारतीय 'आंदोलन' मान लेना ऐतिहासिक रूप से सावधानी की माँग करता है। जॉन स्ट्रैटन हॉले ने आधुनिक 'भक्ति आंदोलन' की अवधारणा की ऐतिहासिक निर्मिति पर प्रश्न उठाते हुए दिखाया है कि भक्ति की क्षेत्रीय, भाषिक और संप्रदायगत परंपराएँ कहीं अधिक विविध और जटिल थीं।[11]

इसलिए गुरु–शिष्य संबंध को भी एक ही मॉडल में बाँधना उचित नहीं होगा।

कहीं गुरु संप्रदाय की परंपरा का वाहक है। कहीं वह व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव का केंद्र है। कहीं वह सामाजिक बंधनों को तोड़ने वाला हैकहीं गुरु प्रियतम के रूप में उपस्थित और कहीं स्वयं जीवन गुरु बन जाता है।

भक्ति की यही बहुलता उसके जीवंत स्वरूप का प्रमाण है।

14. धरणीदास का 'पहाड़ा' : गुरु से अंतर्ज्योति तक

धरणीदास का 'पहाड़ा' गुरु–शिष्य संबंध की आंतरिक यात्रा का अत्यंत सुंदर काव्यात्मक रूपक है।

आरंभ में वे कहते हैं—

"एका एक मिलै गुरु पूरा, मूल मंत्र जो पावै। सकल संत की बानी बुझै, मन परतीत बढ़ावै॥"[12] यहाँ गुरु की प्राप्ति के तुरंत बाद 'सकल संत की बानी बुझै' आता है। इसका आशय है कि गुरु किसी एक संप्रदाय की सीमित सूचना नहीं देता; वह ऐसी दृष्टि देता है जिससे विभिन्न संत-वाणियों का आंतरिक अर्थ खुलने लगता है।

इसके बाद—

"दूआ दुई तजै जो दुबिधा; रजगुन तमगुन त्यागै।"

"सतयें सात सहज धुनि उपजै,
सुनि सुनि आनंद बाढ़ै।"
और अंततः—
"नवें नवो दुवारहिं निरखै,
जगमग जगमग जोती।
दामिनि दमकै अमृत बरसै,
निझर झरै मनि मोती॥"
यहाँ 'ज्योति' बाहरी चमत्कार नहीं, अंतर्दृष्टि का काव्यात्मक रूपक है।
इस पद को एक आध्यात्मिक मानचित्र की तरह पढ़ा जा सकता है—

गुरु ⟶ विश्वास ⟶ द्विविधा का त्याग ⟶ साधना ⟶ अंतर्मुखता ⟶ सहज ध्वनि ⟶ ज्योति।

गुरु आरंभ-बिंदु है, लेकिन अंतिम यात्रा शिष्य को स्वयं करनी पड़ती है।

गुरु शिष्य की यात्रा अपने हाथ में नहीं लेता; वह यात्रा की दिशा प्रकाशित करता है।

गुरु और देह : आध्यात्मिकता का जीवित अनुभव

भक्ति-साहित्य में गुरु–शिष्य संबंध केवल विचार की भाषा में व्यक्त नहीं होता। वह देह, वाणी, संगीत, नृत्य, स्पर्श, आँसू, विरह और सेवा में भी अभिव्यक्त होता है।बुल्ले शाह का नृत्य, सहजोबाई की साधना, मीरा का सामाजिक मर्यादाओं से टकराता प्रेम और रूमी का समा—ये सभी दिखाते हैं कि आध्यात्मिकता अमूर्त विचार नहीं है। पेचिलिस का भक्ति को embodiment के संदर्भ में पढ़ना इसी कारण महत्त्वपूर्ण है। उनकी पुस्तक का केंद्रीय तर्क भक्ति को सक्रिय सहभागिता और देहधर्मिता के रूप में देखने का आग्रह करता है।[13]

इस संदर्भ में गुरु–शिष्य संबंध भी एक **जीवित अनुभव (lived experience)** बन जाता है। शिष्य गुरु को केवल सुनता नहीं; उसके साथ एक संबंध जीता है।

'मैं' से 'तू' और 'तू' से 'सब'

भारतीय भक्ति की गहरी अंतर्धारा को तीन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है— मैं, तुम और हम

पहले साधक अपने 'मैं' को पहचानता है।

फिर वह उसे प्रिय के सामने रखता है। फिर 'मैं' और 'तू' के बीच की दूरी कम होने लगती है। और अंततः दूसरे में भी उसी चेतना की अनुभूति होने लगती है। कबीर के यहाँ यह भीतर के राम की खोज है। मीरा के यहाँ गिरधर के प्रति आत्मसमर्पण है। जनाबाई के यहाँ श्रम और भक्ति का मिलन है। सहजोबाई के यहाँ स्त्री की आध्यात्मिक आत्म-प्रतिष्ठा है। बुल्ले शाह के यहाँ जाति से ऊपर प्रेम की पहचान है। रूमी के यहाँ ज्ञान से ऊपर प्रेम की अग्नि है।धरणीदास के यहाँ गुरु से अंतर्ज्योति तक की यात्रा है। अलग-अलग संदर्भों के बावजूद इन अनुभवों में एक साझा तत्त्व है—अहं की सीमाओं का विस्तार। यही भक्ति का गहरा मानवीय अर्थ है।

निष्कर्ष : गुरु का अंतिम चमत्कार

भारतीय भक्ति परंपरा में गुरु–शिष्य संबंध को केवल धार्मिक शिक्षा या आध्यात्मिक अनुशासन की संस्था मानना उसके साहित्यिक और दार्शनिक अर्थ को सीमित कर देता है। यह मनुष्य के भीतर घटने वाले रूपांतरण की एक गहरी सांस्कृतिक संरचना है। गुरु ज्ञान को अनुभव में, अनुभव को प्रेम में, प्रेम को साधना में और साधना को जीवन में रूपांतरित करने वाली उपस्थिति है। कबीर के यहाँ गुरु गोविंद को पहचानने की दृष्टि देता है। सहजोबाई के यहाँ गुरु सामाजिक नियति के भीतर से साधिका की स्वतंत्र सत्ता को उद्घाटित करता है। मीरा के यहाँ गुरु-तत्त्व प्रियतम में विलीन हो जाता है। जनाबाई के यहाँ दैनिक श्रम आध्यात्मिक अनुभव का

क्षेत्र बन जाता है। बुल्ले शाह के यहाँ गुरु जन्माधारित 'जात' को प्रेम से अर्जित पहचान में बदल देता है।रूमी के जीवन में शम्स विद्वत्ता के भीतर छिपी प्रेमाग्नि को जगा देते हैं। और धरणीदास के यहाँ 'पूरा गुरु' 'मूल मंत्र' से 'जगमग जगमग जोती' तक की यात्रा का पहला द्वार खोलता है। इसलिए गुरु की महिमा उसके अनुयायियों की संख्या में नहीं, उस प्रकाश में है जो उसके कारण शिष्य के भीतर उत्पन्न होता है। गुरु का सबसे बड़ा चमत्कार यह नहीं कि वह शिष्य को अपने जैसा बना दे। उसका सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि वह शिष्य को उसके अपने सत्य तक पहुँचा दे। यहीं गुरु व्यक्ति से आगे बढ़कर **गुरु-तत्त्व (guru-principle)** बन जाता है। और तब धरणीदास की पंक्ति—

"एका एक मिलै गुरु पूरा..."

केवल गुरु की स्तुति नहीं रह जाती। वह भारतीय भक्ति की पूरी ज्ञान-दृष्टि का रूपक बन जाती है—बाहर से भीतर की ओर, सूचना से अनुभव की ओर, 'मैं' से 'तू' की ओर और अंततः 'तू' से 'सब' की ओर जाने वाली यात्रा।

भारतीय भक्ति का सार शायद इसी में है कि मनुष्य अपने भीतर ऐसी जगह बना सके जहाँ प्रेम स्वामित्व नहीं, संबंध बन जाए; ज्ञान अहंकार नहीं, विनम्रता पैदा करे; समर्पण निर्भरता नहीं, स्वायत्तता दे; और आध्यात्मिक अनुभव मनुष्य को संसार से विमुख नहीं, बल्कि अधिक करुणामय मनुष्य बनाए। सच्चा गुरु अंततः शिष्य को अपने पास नहीं रखता—वह उसे प्रकाश के पास ले जाता है।

ENDNOTES / अंत-टिप्पणियाँ

1. *Śrīmad Bhagavad Gītā*, 4.34. श्लोक में गुरु से ज्ञान-प्राप्ति के लिए "प्रणिपात", "परिप्रश्न" और "सेवा" तीनों को आवश्यक बताया गया है। चूँकि यह श्लोक-संदर्भ है, विभिन्न संस्करणों में पृष्ठ-संख्या अलग होने के कारण अध्याय–श्लोक संख्या ही दी गई है।

2. Karen Pechilis Prentiss, *The Embodiment of Bhakti* (New York: Oxford University Press, 2000), 17–24. इस अध्याय में Pechilis 'devotion' की पारंपरिक अवधारणा की समीक्षा करते हुए भक्ति को सक्रिय सहभागिता के रूप में पुनर्विचार करती हैं। Oxford Academic अध्याय की पृष्ठ-सीमा 17–24 की पुष्टि करता है। (OUP Academic)

3. Kabir, *The Bijak of Kabir*, trans. Linda Hess and Shukdev Singh (New York: Oxford University Press, 2002), "Rāmānand" और गुरु-संबंधी संबंधित साखियों के पाठ देखें। कबीर के दोहे के संस्करणों में पाठांतर मिलते हैं; अतः जर्नल submission में उद्धृत दोहे को उस मुद्रित संस्करण से मिलाना उचित होगा जिसे शोधकर्ता ने वास्तव में इस्तेमाल किया है।

4. Daniel Gold, *The Lord as Guru: Hindi Sants in North Indian Tradition* (New York: Oxford University Press, 1987), 3–12. पुस्तक की विषय-सूची में "Sants, Holy Men and Indian Religion" पृष्ठ 3 से आरंभ होता है और गुरु, संत तथा उत्तर भारतीय धार्मिक परंपरा के संबंध को पुस्तक की केंद्रीय समस्या के रूप में विकसित किया गया है। (Google Books)

5. Sahajo Bai, *Sahaj Prakash*, चरणदास परंपरा से संबद्ध पद। विवाह-मंडप संबंधी प्रसंग संत-परंपरा में प्रचलित जीवन-कथा का हिस्सा है। चूँकि *Sahaj Prakash* के विभिन्न प्रकाशित संस्करणों में पाठ और पृष्ठ-संख्या भिन्न हो सकती है, यहाँ बिना संस्करण-विशिष्ट सत्यापन के काल्पनिक पृष्ठ-संख्या नहीं दी गई है।

6. Karen Pechilis, ed., *The Graceful Guru: Hindu Female Gurus in India and the United States* (New York: Oxford University Press, 2004), 3–50. Pechilis का "Introduction: Hindu Female Gurus in Historical and Philosophical Context" पृष्ठ 3–50 में है और स्त्री गुरु की धार्मिक नेतृत्व में भागीदारी तथा परंपरा में निरंतरता/परिवर्तन पर केंद्रित है। (ResearchGate)

7. Mira Bai, "मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई," *मीरा पदावली*. मीरा के पदों के अनेक संकलन और पाठ-रूप उपलब्ध हैं; इसलिए उद्धरण के साथ संस्करण-विशिष्ट पृष्ठ-संख्या तभी जोड़ी जानी चाहिए जब प्रयुक्त संस्करण निश्चित हो।

8. Indira Gandhi National Open University, *Bhakti and Sufi Movements in Medieval India*, Unit 3, "Bulleh Shah, the Sufi Mystic and Poet." बुल्ले शाह और शाह इनायत के संबंध तथा बुल्ले शाह के जीवन-वृत्तांत में लोक-स्मृति की भूमिका के लिए यह सामग्री उपयोगी है।

9. Annemarie Schimmel, *The Triumphal Sun: A Study of the Works of Jalāloddin Rumi* (Albany: State University of New York Press, 1993). रूमी और शम्स के आध्यात्मिक संबंध को पुस्तक के व्यापक जीवन-काव्यात्मक संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। संस्करण-विशिष्ट पृष्ठ-संख्या के लिए प्रयुक्त मुद्रित संस्करण से मिलान आवश्यक है।

10. Gold, *The Lord as Guru*, विशेषतः 3–33. पुस्तक की विषय-सूची में आरंभिक अध्याय संत, गुरु और उत्तर भारतीय धार्मिक संरचनाओं को केंद्र में रखते हैं। (Google Books)

11. John Stratton Hawley, *A Storm of Songs: India and the Idea of the Bhakti Movement* (Cambridge, MA: Harvard University Press, 2015), 1–12, 13–58. Hawley पुस्तक की भूमिका में 'bhakti movement' की आधुनिक ऐतिहासिक निर्मिति की समस्या उठाते हैं; पहला अध्याय "The Bhakti Movement and Its Discontents" पृष्ठ 13 से आरंभ होता है। (De Gruyter Brill)

12. Dharnidas, "Pahāṛā," उपलब्ध डिजिटल पाठ, *Hindwi*. "एका एक मिलै गुरु पूरा…" से आरंभ होने वाला पाठ इसी रचना में संकलित है। मुद्रित संस्करण के अभाव में डिजिटल पाठ के लिए page number देना उचित नहीं होगा।

13. Pechilis Prentiss, *The Embodiment of Bhakti*, 3–11, 17–24. पुस्तक का Introduction पृष्ठ 3–11 और "Bhakti as Devotion" पृष्ठ 17–24 में है; OUP के आधिकारिक अभिलेख में दोनों की पृष्ठ-सीमा उपलब्ध है। (OUP Academic)

संदर्भ-सूची / Bibliography

प्राथमिक स्रोत

कबीर। *कबीर ग्रंथावली*। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

Kabir. *The Bijak of Kabir*. Translated by Linda Hess and Shukdev Singh. New York: Oxford University Press, 2002.

धरणीदास। *धरणीदास की वाणी*। प्रमाणित संपादित संस्करण।

धरणीदास। "पहाड़ा।" *Hindwi*.

मीरा। *मीरा पदावली*। प्रमाणित संपादित संस्करण।

सहजोबाई। *सहज प्रकाश*। चरणदास परंपरा का प्रमाणित संस्करण।

Rumi, Jalāl al-Dīn. *The Masnavi*. विभिन्न प्रमाणित अनुवाद।

द्वितीयक स्रोत

Gold, Daniel. *The Lord as Guru: Hindi Sants in North Indian Tradition*. New York: Oxford University Press, 1987. (Google Books)

Hawley, John Stratton. *A Storm of Songs: India and the Idea of the Bhakti Movement*. Cambridge, MA: Harvard University Press, 2015. (De Gruyter Brill)

Pechilis, Karen, ed. *The Graceful Guru: Hindu Female Gurus in India and the United States*. New York: Oxford University Press, 2004. (ResearchGate)

Pechilis Prentiss, Karen. *The Embodiment of Bhakti*. New York: Oxford University Press, 2000. (OUP Academic)

Schimmel, Annemarie. *The Triumphal Sun: A Study of the Works of Jalāloddin Rumi*. Albany: State University of New York Press, 1993.

Schomer, Karine, and W. H. McLeod, eds. *The Sants: Studies in a Devotional Tradition of India*. Delhi: Motilal Banarsidass, 1987.

Corresponding Author: Dr. Medha
E-mail: **medha.hindi@satyawatie.du.ac.in**
Received 10 September 2024; Accepted 25 September 2024. Available online: 30 September, 2024
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License